www.shodhpith.com ISSN (Online): 3049-3331

Shodhpith
International Multidisciplinary
Research Journal
(International Open Access, Peer-reviewed & Refereed Journal)
(Multidisciplinary, Bimonthly, Multilanguage)
Volume: 1 Issue: 4 July-August 2025

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधी और अम्बेडकर: एक तुलनात्मक अध्ययन

डॉ0 राधे श्याम

पूर्व शोध छात्र, इतिहास विभाग, पाटलिपुत्र विश्वविद्यालय, पटना

सारांश:

यह अध्ययन भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर की वैचारिक धाराओं का तुलनात्मक विश्लेषण प्रस्तुत करता है। स्वतंत्रता आंदोलन केवल औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष नहीं था, बल्कि नैतिक राजनीति, सामाजिक न्याय और संवैधानिक आधुनिकता के बीच सतत संवाद भी था। गांधी ने आंदोलन को जन आधारित नैतिक परियोजना का रूप दिया अहिंसा, सत्याग्रह, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप और ग्राम स्वराज के माध्यम से जनता को संगठित करते हुए सत्ता की वैधता को चुनौती दी। इसके विपरीत, अंबेडकर ने जाति उन्मूलन, प्रतिनिधित्व, मूल अधिकारों और राज्य की कल्याणकारी जिम्मेदारियों पर केंद्रित संवैधानिक लोकतंत्र को प्राथमिकता दी, ताकि बराबरी और गरिमा का व्यावहारिक ढांचा बन सके। ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दक्षिण अफ्रीका का अनुभव, 'हिंद स्वराज' तथा रचनात्मक कार्यक्रम गांधी की राजनीति के स्रोत हैं; वहीं कोलंबिया और एलएसई में शिक्षा, श्रम कानूनों पर हस्तक्षेप, गोलमेज सम्मेलन, पूना पैक्ट और संविधान–निर्माण में भूमिका अंबेडकर के संस्थागत आग्रहों को दर्शाती है। दोनों के बीच साध्य साधन, धर्म राजनीति संबंध और राज्य की भूमिका पर मतांतर स्पष्ट हैरू गांधी के लिए स्वराज नैतिक आत्मशासन और विकेन्द्रीकृत पंचायत राज है; अंबेडकर के लिए राष्ट्र राज्य संवैधानिक नियम, अधिकार सुरक्षा और बराबरी का तंत्र है। सामाजिक न्याय के प्रश्न पर गांधी अस्पृश्यता निवारण, सार्वजनिक सुविधाओं तक समान पहुँच और मनोवृत्ति परिवर्तन को प्राथमिक रणनीति मानते हैं; अंबेडकर अंतर्जातीय विवाह भोजन, आरक्षण, स्वतंत्र राजनीतिक आवाज़ और वैधानिक गारंटी को अनिवार्य साधन ठहराते हैं। महिला अधिकारों में गांधी ने अहिंसक जन–भागीदारी से सामाजिक नैतिकता को मजबूत किया, जबकि अंबेडकर ने हिंदू कोड बिल द्वारा उत्तराधिकार व विवाह–संशोधन को न्याय का केंद्रीय उपकरण माना। राजनीतिक संगठन–रणनीति में गांधी ने कांग्रेस मंच, सत्याग्रह और बहिष्कार से जन–वैधता निर्मित की; अंबेडकर ने स्वतंत्र मजदूर पार्टी/शेड्यूल्ड कास्ट फेडरेशन, ज्ञापनों और चुनावी दावेदारी से प्रतिनिधित्व की संस्थागत राजनीति विकसित की। स्वतंत्रता के बाद संविधानवाद ने सामाजिक लोकतंत्र की संरचना दी, और गांधीवादी कार्यक्रमों ने ग्रामोन्मुख विकास, स्वावलंबन और नागरिक अनुशासन की संस्कृति को पोषित किया। समकालीन भारत में ध्रुवीकरण, असमानता और संस्थागत अविश्वास जैसी चुनौतियाँ संकेत करती हैं कि लोकतंत्र की विश्वसनीयता नैतिक स्वशासन तथा अधिकार–आधारित संवैधानिकता के संतुलन पर निर्भर है। इसी द्वंद्व संवाद से भारतीय आधुनिकता को नैतिक ऊर्जा और संस्थागत दृढ़ता मिलती है। निष्कर्षतः, गांधी की नैतिक राजनीति और अंबेडकर की संवैधानिक दृष्टि लोकतंत्र को स्थायित्व देती हैं।

d¡th 'kCn% सामाजिक न्याय, जाति–उन्मूलन, संवैधानिक लोकतंत्र, सत्याग्रह, ग्राम स्वराज, प्रतिनिधित्व,

रचनात्मक कार्यक्रम।

प्रस्तावना

भारतीय स्वतंत्रता संग्राम का इतिहास केवल औपनिवेशिक शासन के विरुद्ध संघर्ष की कथा नहीं है, बल्कि यह विविध वैचारिक दृष्टियों, सामाजिक चेतना और राजनीतिक प्रयोगों का समुच्चय भी है। इस संदर्भ में महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अंबेडकर का योगदान विशेष रूप से उल्लेखनीय है। गांधी ने स्वतंत्रता संग्राम को जन–आंदोलन का स्वरूप दिया और अहिंसा, सत्याग्रह तथा ग्राम स्वराज जैसे आदर्शों को सामने रखा, वहीं अंबेडकर ने सामाजिक न्याय, जाति–उन्मूलन और संवैधानिक समानता की अवधारणा को प्राथमिकता दी। दोनों के विचारों में विरोधाभास भी रहा और पूरकता भी।[1] यह अध्ययन औचित्यपूर्ण है क्योंकि गांधी और अंबेडकर भारतीय राष्ट्रवाद की दो भिन्न वैचारिक धाराओं का प्रतिनिधित्व करते हैं। गांधी ने भारतीय समाज के नैतिक और आध्यात्मिक पुनर्निर्माण पर बल दिया, जबकि अंबेडकर ने संरचनात्मक असमानताओं को चुनौती देकर सामाजिक लोकतंत्र की दिशा तय की। आज भी जातीय असमानता, सामाजिक न्याय और लोकतांत्रिक मूल्यों पर हो रही बहसें उनके विचारों को प्रासंगिक बनाती हैं। समकालीन भारत में सामाजिक समरसता, समानता और लोकतांत्रिक सशक्तिकरण के विमर्श को समझने के लिए यह तुलनात्मक अध्ययन अत्यंत आवश्यक है।

गांधी का राष्ट्रवाद सांस्कृतिक और नैतिक मूल्यों पर आधारित था, जबकि अंबेडकर का राष्ट्रवाद समानता और संवैधानिक ढाँचे से प्रेरित था। सामाजिक न्याय की दृष्टि से गांधी ने अस्पृश्यता–निवारण पर बल दिया, परंतु जाति–प्रथा के मूल ढाँचे को चुनौती नहीं दी। दूसरी ओर, अंबेडकर ने जाति–उन्मूलन और समान नागरिक अधि. कारों की अनिवार्यता पर बल दिया। उदार–लोकतंत्र के संदर्भ में गांधी ने ग्राम–स्वराज और नैतिक राजनीति का समर्थन किया, जबकि अंबेडकर ने प्रतिनिधि लोकतंत्र और संवैधानिक संस्थाओं की मजबूती को आधार बनाया।[2] यह सैद्धांतिक ढाँचा तुलनात्मक अध्ययन को ठोस दिशा प्रदान करता है। इस शोध की मूल समस्या यह है कि गांधी और अंबेडकर की वैचारिक दृष्टियाँ भारतीय स्वतंत्रता संग्राम और स्वतंत्र भारत के भविष्य निर्माण में किस प्रकार समानांतर और अंतर्विरोधी रहीं। शोध का उद्देश्य गांधी और अंबेडकर की राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक अवधारणाओं का तुलनात्मक विश्लेषण करना है, ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि स्वतंत्रता संग्राम की दिशा और स्वतंत्र भारत की नीतियों पर उनके विचारों का क्या प्रभाव पड़ा।

गांधी पर केंद्रित साहित्य में बी.आर. नंदा (1985) और राजमोहन गांधी (2006) के कार्य उल्लेखनीय हैं, जिन्होंने गांधी के राजनीतिक और सामाजिक प्रयोगों को विस्तृत रूप में प्रस्तुत किया। वहीं अंबेडकर के विचारों पर शारदा कबीर (1991) और गुरुदास बनर्जी (2002) जैसे विद्वानों ने उनके सामाजिक न्याय और संवैधानिक दृष्टिकोण का विश्लेषण किया। तुलनात्मक अध्ययन में आशीष नंदी (1995) और रामचंद्र गुहा (2010) ने गांधी–अंबेडकर के अंत. र्विरोधों और अंतर्संबंधों को विश्लेषित किया है। इन अध्ययनों से यह स्पष्ट होता है कि गांधी और अंबेडकर दोनों भारतीय लोकतंत्र की बुनियाद में अलग–अलग किन्तु समान रूप से महत्त्वपूर्ण स्तंभ रहे हैं। यह अध्ययन मुख्यतः गुणात्मक शोध–विधि पर आधारित है। ऐतिहासिक और व्याख्यात्मक पद्धति का उपयोग करते हुए प्राथमिक और द्वि तीयक स्रोतों का विश्लेषण किया गया है। प्राथमिक स्रोतों में गांधी के 'हरिजन' तथा अंबेडकर के 'बहिष्कृत भारत' और संविधान सभा की बहसों का अध्ययन किया गया है। द्वितीयक स्रोतों में भारतीय विद्वानों की पुस्तकें, शोध–पत्र और जर्नल लेख सम्मिलित किए गए हैं।

ऐतिहासिक एवं वैचारिक पृष्ठभूमि

"भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधी और अम्बेडकरः एक तुलनात्मक अध्ययन" की 'ऐतिहासिक एवं वैचारिक पृष्ठभूमि' को समझने के लिए पहले उन जीवन–चरणों और बौद्धिक स्रोतों पर दृष्टि आवश्यक है, जिनसे दोनों व्यक्तित्वों की राजनीति और नैतिक कल्पना बनी। मोहनदास करमचंद गांधी (1869–1948) के वैचारिक गठन में दक्षिण अफ्रीका (1893–1915) का अनुभव, भारतीय समाज के ग्रामीण जीवन का निकट संपर्क, और हिंद स्वराज (1909) में प्रतिपादित आधुनिक सभ्यता की आलोचना निर्णायक रहे। सत्याग्रह, अहिंसा, स्वदेशी, ट्रस्टीशिप तथा आत्मबल की अवधारणाएँ गांधी के लिए केवल राजनीतिक तकनीक नहीं, बल्कि नैतिक–सांस्कृतिक पुनर्निर्माण की परियोजना थीं; इनके दार्शनिक स्रोत गीता, जैन–बौद्ध अहिंसा, टॉल्स्टॉय और रस्किन में मिलते हैं।[3] भारतीय

परिदृश्य में लौटकर चंपारण सत्याग्रह, खेड़ा, अहमदाबाद मिल–हड़ताल, असहयोग, सविनय अवज्ञा और भारत छोड़ो जैसे अभियानों के जरिए उन्होंने जन–राजनीति को ग्राम्य नैतिकता और आत्मानुशासन से जोड़ा।

भीमराव रामजी अम्बेडकर (1891–1956) का बौद्धिक विकास कोलंबिया और एलएसई में संवैधानिक उदारवाद, प्रैग्मैटिज़्म और अर्थनीति के अध्ययन से पोषित हुआ। उनके लिए सामाजिक न्याय का केंद्र–बिंदु जाति–उन्मूलन था; इसलिए वे प्रतिनिधित्व, मूल अधिकार, आर्थिक अवसर–समानता और राज्य के कल्याणकारी दायित्वों पर जोर देते हैं। ।ददपीपसंजपवद व िब्ंजम में वे जाति–व्यवस्था की नैतिक–अर्थनीतिक आलोचना करते हुए लोकतंत्र को "सामाजिक जीवन–शैली" मानते हैं, न कि मात्र संसदीय तंत्र।[4] बहिष्कृत हितकारिणी सभा (1924), गोलमेज़ सम्मेलनों में पृथक निर्वाचिका की माँग, पूना पैक्ट की जटिल वार्ता, श्रम–विधियों पर उनका हस्तक्षेप, संविधान–. निर्माण में अग्र भूमिका और 1956 में बौद्ध दीक्षा ये चरण उनके वैचारिक आग्रहों की संस्थागत अभिव्यक्तियाँ हैं। औप. निवेशिक भारत का सामाजिक–राजनीतिक संदर्भ नस्ली–औपनिवेशिक प्रभुत्व, भूमि–राजस्व और औद्योगिक पूँजी के संजाल, प्रांतीय–केंद्र संबंधों की असमान संरचना और जाति–लिंग–समुदाय आधारित पदानुक्रमों के अंतःक्रिया–क्षेत्र में निर्मित हुआ। 1858–1919 के संवैधानिक सुधारों से सीमित राजनीतिक भागीदारी पैदा हुई, पर साम्राज्यवादी हित सर्वोपरि रहे; 1919 के बाद दमन, जनांदोलनों और वैधानिक विमर्श का द्वंद्व तीव्र होता गया। इसी के बीच "अवाम" की नई सार्वजनिकता प्रिंट–कल्चर, सभाएँ, मेलों, किसान–मजदूर संगठनों ने राष्ट्रीय राजनीति को जनतांत्रिक रूप दिया।[5] भारतीय राष्ट्रीय आंदोलन की संरचना बहु–स्तरीय और बहु–चरणीय थी, प्रारंभिक उदारवादी संवैधानिक अपील (1885–1905), उग्र–स्वदेशी चरण (1905–1917), फिर गांधी के नेतृत्व में जन–आधारित नैतिक–राजनीति का उदय (1919–1934), और अंततः व्यापक असहमति–सम्मिलन के साथ 1942 का भारत छोड़ो तथा 1946–50 के संवैधानिक रूपांतरण तक पहुँचना। इसी ढाँचे में गांधी का नैतिक–राजनीतिक नेतृत्व जन–अनुशासन और नै. तिक अर्थशास्त्र का वरण कराता है, जबकि अम्बेडकर सामाजिक लोकतंत्र, प्रतिनिधित्व और संरचनात्मक समता को संविधान–संचालित आधुनिकता में रूपायित करते हैं। दोनों की असहमति साधन–साध्य, जाति–प्रश्न और राज्य की भूमिका पर उसी साझा औपनिवेशिक संदर्भ और राष्ट्रीय आंदोलन की बहुध्रुवीय संरचना में समझी जानी चाहिए, जहाँ नैतिकता, न्याय और स्वतंत्रता के भिन्न मार्ग एक ही लोकतांत्रिक क्षितिज की ओर बढ़ते हैं।[6]

तुलनात्मक वैचारिक आयाम

गांधी और अम्बेडकर के राष्ट्र, लोकतंत्र, धर्मदृराजनीति, नैतिकता और व्यक्ति, समुदाय राज्य संबंध पर विचार मूलतः भिन्न बौद्धिक परंपराओं से उपजते हैं, फिर भी भारतीय आधुनिकता की संरचना इन्हीं अंतःसंवादों से बनती है। गांधी के लिए राष्ट्रवाद आत्मसंयम और आत्मशासन की नैतिक साधना है 'स्वराज' का आशय पहले अपने ऊपर शासन है, बाह्य सत्ता के निष्कासन से भी पहले आत्मानुशासन की स्थापना । उनके 'रामराज्य/ग्रामस्वराज' का तात्पर्य किसी संप्रदाय–राज से नहीं, बल्कि नैतिक न्याय–आधारित लोक–राज से है जहाँ सबसे निर्बल को त्वरित न्याय और गरिमा मिले; स्वयं गांधी ने स्पष्ट किया कि "रामराज" ईश–राज है, हिंदू–राज नहीं । इसीलिए ग्राम–केंद्रित विकेन्द्रीकृत शासनउद्योग, शिक्षा, स्वास्थ्य और ग्राम–उद्योगों पर आधारितउनके राजनीतिक राष्ट्र–कल्प का व्यावहारिक रूप बना।[7] इसके विपरीत अम्बेडकर का राष्ट्र–राज्य संविधानवादी ढाँचे में निहित हैरू अधिकार–. संरक्षित, संस्थाबद्ध और अल्पसंख्यक दलित समुदायों के लिए वैधानिक सुरक्षा वाला आधुनिक राज्य। वे चेताते हैं कि केवल राजनीतिक लोकतंत्र पर्याप्त नहीं; वह तब तक टिकाऊ नहीं जब तक उसके अधिष्ठान में "सामाजिक लोकतंत्र" स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व की 'अखण्ड त्रयी' स्थापित न हो। लोकतंत्र की अवधारणा पर यह मतभेद निर्णायक है। गांधी का लोकतंत्र नैतिक आत्मशासन और लोक–धर्म से अनुप्राणित विकेन्द्रीकृत पंचायत–राज की दिशा में जाता है, जहाँ सत्ता की वैधता जन–संयम और सत्यअहिंसा से आती है। अम्बेडकर के लिए लोकतंत्र का सार सामाजिक संरचना में बराबरी और बंधुत्व का वास्तविकरण है; बिना सामाजिक लोकतंत्र के राजनीतिक लोकतंत्र महज़ काग़जी रह जाएगा अर्थात बहुसंख्यक वर्चस्व या विशेषाधिकार का खतरा बना रहेगा।[8]

धर्म और राजनीति के संबंध पर भी दोनों की दृष्टि भिन्न है। गांधी 'धर्म' को आचरण–नैतिकता मानते हुए कहते हैं कि "राजनीति बिना धर्म (नैतिकता) के नरक सम है" पर उनका धर्म समावेशी और सर्वधर्म–समभाव पर आधारित है; 'रामराज' का अर्थ ही न्याय–सम्मत लोककल्याण है, न कि धर्मतंत्र। अम्बेडकर धर्म को सामाजिक नी. तिशास्त्र की कसौटी पर कसते हैं यदि किसी धार्मिक धारणाएँ समानता बंधुत्व के विरुद्ध जाएँ तो उन्हें रूपान्तरित

करना होगा; उनके 'जाति–उन्मूलन' का तर्क यही है कि नैतिकता और धर्म समुदाय–जीवन की उन्नति से मापे जाएँ, न कि परंपरागत श्रुति स्मृति से।

नैतिकता, सत्य अहिंसा बनाम अधिकार–आधारित न्याय के प्रश्न पर गांधी साध्य साधन की एकता पर आग. ह करते हैं सत्य, अहिंसा, आत्मशुद्धि और प्रायश्चित्त से सामाजिक परिवर्तन, जबकि अम्बेडकर न्याय को विधिक संवैधानिक अधिकारों, संस्थागत उपायों और प्रतिनिधि राज्य–क्रिया के माध्यम से क्रियान्वित देखना चाहते हैं; उनके लिए अधिकार और समान अवसर बिना वैधानिक गारंटी के खोखले हैं। अंततः "व्यक्ति–समुदाय–राज्य" की भूमिका में भी भेद उभरता हैरू गांधी व्यक्ति के आत्मसंयमित नैतिक संवर्धन और ग्राम–समुदाय की परस्पर–निर्भरता पर ज़ोर देते हैं, ताकि राज्य 'सेवक' रूप में सीमित रहे। अम्बेडकर व्यक्ति की गरिमा की रक्षा हेतु समुदायों के बीच शक्ति–असमानताओं को संतुलित करने वाला सक्रिय, संवैधानिक न्यायकारी राज्य चाहते हैं अधिकार–संरक्षण, प्रतिनिधित्व और सामाजिक लोकतंत्र की संस्थागत सुनिश्चितता के साथ।9 समग्रतः, गांधी का ग्रामस्वराज केन्द्रित नैतिक राष्ट्रवाद और अम्बेडकर का अधिकार आधारित संविधानवाद भारतीय लोकतंत्र को नैतिक ऊर्जा और संस्थ. ागत दृढ़ता, दोनों प्रदान करते हैं; यही द्वंद्व संवाद भारतीय आधुनिकता की गहरी परतों को अर्थ देता है।

सामाजिक न्याय और जाति प्रश्न

"सामाजिक न्याय और जाति प्रश्न" के संदर्भ में गांधी और अम्बेडकर की दृष्टियाँ मूलतः विधि–नैतिकता और संरचनात्मक परिवर्तन के द्वंद्व पर खड़ी दिखती हैं। गांधी वर्ण–व्यवस्था को "कार्यदृविभाजन" और नैतिक अनुशासन के रूप में देखते हुए जाति की ऊँच–नीच तथा अछूतप्रथा को अस्वीकार करते हैं; उनके लिए तत्काल लक्ष्य था अछूतता का सम्पूर्ण उन्मूलन, मंदिर–प्रवेश, सार्वजनिक सुविधाओं में समान पहुँच, और 'हरिजन सेवक संघ' के माध्यम से सामाजिक मनोदृष्टि में परिवर्तन लाना। वे स्पष्ट लिखते हैं कि लड़ाई 'वर्णाश्रम' के नाम पर ऊँच–नीच के विरुद्ध है; अछूतता मिटेगी तो हिन्दू समाज शुद्ध होगा और वर्ण एक क्षैतिज तल पर समान प्रतिष्ठा का प्रतीक बनेगा।10 इसके उलट अम्बेडकर का आग्रह था कि सुधार नहीं, बल्कि 'जाति–उन्मूलन' ही मुक्ति का द्वार है; अंतर्जातीय विवाह–भोजन, पेशे की स्वायत्तता और 'स्वतंत्र, समतामूलक, बंधुत्वपरक' सामाजिक संरचना के बिना लोकतंत्र खोखला है यह उनका नैतिक–दार्शनिक तर्क भी है और कार्यक्रम भी।[11] अछूत/दलित मुक्ति के प्रश्न पर गांधी की रणनीति रचनात्मक कार्यों, जन–मत परिवर्तन और आत्मानुशासन पर आधारित रही उदाहरण के लिए, जलस्रोतों–विद्यालयों तक पहुँच, मंदिर–प्रवेश अभियानों और 'प्रायश्चित्त' की नैतिक अपीलें।

अम्बेडकर ने राजनीतिक–संवैधानिक औज़ारों को प्राथमिकता दी अलग निर्वाचिका/दोहरे मताधिकार के माध्यम से स्वतंत्र राजनीतिक वाणी, और बाद में पूना–समझौते के राजनीतिक परिणामों की सख़्त समालोचना। वे दिखाते हैं कि समझौते ने संख्या तो बढ़ाई पर "डबल वोट" का अमूल्य औज़ार छिन गया, जिससे प्रभावी प्रतिनिधित्व क्षीण हुआ। आरक्षण, प्रतिनिधित्व और सकारात्मक भेदभाव पर भी यही वैचारिक दूरी दिखती है गांधी संयुक्त निव. ाचिका और नैतिकदृसामाजिक समरसता की ओर झुकते हैं, जबकि अम्बेडकर संरचनात्मक असमानता को दुरुस्त करने हेतु विधिक आश्वासनों, आरक्षण और संस्थागत प्रतिनिधित्व को अनिवार्य मानते हैं। महिला अधिकार, शिक्षा और सामाजिक सुधार पर दोनों की पहलें भी भिन्न–समानांतर हैं। अम्बेडकर ने हिंदू कोड विधेयक के माध्यम से एकविवाह, उत्तराधिकार/संपत्ति अधिकार, और विवाहदृविच्छेद के प्रावधानों को सामाजिक लोकतंत्र का केन्द्र समझा उनके शब्दों में, "वर्ग–वर्ग और स्त्री–पुरुष के बीच असमानता को छोड़े बिना संविधान एक गोबर–ढेर पर महल" है; अतः कोड का पारित होना बुनियादी सामाजिक सुधार का मानदंड है। गांधी ने असहयोग–सत्याग्रह की अहिंसात्मक राजनीति में स्त्रियों की व्यापक भागीदारी को नैतिकदृराजनीतिक शक्ति माना; वे इसे हिंसा–विहीन साहस, त्याग और अनुशासन के माध्यम से स्त्रियों की स्वायत्त नागरिकता के उभार के रूप में देखते हैं।[12] संक्षेप में, गांधी की दृष्टि नैतिक रूपांतरण द्वारा जातिगत अमानवीयता को जर्जर करने की है, जबकि अम्बेडकर विधि, अधिकार और प्रतिनिधित्व के ठोस ढाँचों से जाति–वर्चस्व का उच्छेद चाहते हैं; दोनों की परियोजनाएँ मिलकर स्वतंत्र भारत में सामाजिक न्याय की संवैधानिक–नैतिक नींव रचती हैं।

राजनीतिक रणनीतियाँ और संगठन

गांधी की रणनीति कांग्रेस मंच पर स्थितियों–विशेष के अनुरूप जन–आन्दोलन खड़ा करने की रही। अस.

हयोग (1920–22), सविनय अवज्ञा (1930–34) और ″सत्याग्रह″ को नैतिक दबाव के औज़ार के रूप में संगठित ढाँचे (कांग्रेस स्वयंसेवक दल, रचनात्मक कार्यक्रम) से जोड़ना; इसने बहिष्कार, स्वैच्छिक त्याग और अनुशासित भीड़–क्रिया के माध्यम से औपनिवेशिक शासन की वैधता को चुनौती दी। अम्बेडकर की रणनीति ने प्रतिनिधित्व–वं. चत श्रेणियों के लिए पृथक राजनीतिक संगठन और संवैधानिक वार्ता को प्राथमिक साधन बनाया। 1936 में बम्बई प्रान्त में स्वतंत्र मजदूर पार्टी के गठन और आरक्षित सीटों पर उसकी विजय (15 में 11) ने दलित–श्रमिक आधार को संगठित प्रतिनिधित्व में बदला; 1942 में शेड्यूल्ड कास्ट्स फेडरेशन ने प्राइमरी/फाइनल चुनावों में व्यापक हस्तक्षेप कर अलग राजनीतिक दावेदारी रखी और चुनाव–आँकड़ों से उसे प्रमाणित किया। गांधी का ″जन–संवाद″ प्रार्थना–सभाओं, संक्षिप्त प्रवचनों और नियमित प्रसंग–विश्लेषण से चलता था, जहाँ प्रार्थना अनुशासन, आत्म–संयम और सामूहिक नैतिकता का विधान बनती और तत्पश्चात वे राजनीतिक निर्देश देते; यह सभाएँ सामुदायिक तनाव, त्याग, राशनिंग, शरणार्थी–संकट जैसे तात्कालिक मुद्दों पर मत–निर्माण का माध्यम बनीं। इसके विपरीत, अम्बेडकर ने बहस, विस्तृत ज्ञापनों और याचिकाओं जैसे श्ळतपमअंदबमे वñजीम ेबीमकनसमक ब्ंजमेश को सरकार/मिशन/विधान–सभाओं के समक्ष प्रस्तुति का औपचारिक औजार बनाया, ताकि माँगें नीतिगत भाषा में दर्ज हों और उत्त. रदायित्व नापा जा सके।[13]

″सत्याग्रह″ पर अम्बेडकर का मत था कि नैतिक अपील बहुजन–निर्बल तबकों के लिए पर्याप्त संरक्षण नहीं देती; इसलिए वे विधिक–प्रावधान, प्रशासनिक गारंटी और प्रतिनिधि–व्यवस्था के सुधार को अनिवार्य मानते हैं। श्ॅींज ब्वदहतमे ंदक ळंदकीप भ्ंअम क्वदम जव जीम न्दजवनबींइसमेश में उन्होंने कांग्रेस–प्रधान राष्ट्रवाद की सीमाएँ, पृथक निर्वाचिका/आरक्षण की वकालत और सामाजिक–आर्थिक अपवर्जन के अनुभवजन्य प्रमाण प्रस्तुत किए। नेतृत्व–शैली में गांधी करिश्माई–नैतिक नेतृत्व, स्वैच्छिक कष्ट–सहन, विकेन्द्रीकृत स्वयंसेवक–संरचनाएँ और अनुशासित अहिंसक प्रतिरोध से ऊर्जा लेते हैं; परिणामतः व्यापक ग्रामीण–शहरी भागीदारी, बहिष्कार/जुलूस/नमक–मार्च जैसे प्रतीक–क्रियाएँ और वैधानिक मंचों के बाहर वैधता–संकट पैदा करना उनकी तकनीक रही। दूसरी ओर अम्बेडकर का नेतृत्व सांख्यिकीय साक्ष्य, विधिसम्मत भाषा, दलित–श्रमिक संगठन, ट्रेड–यूनियन/मजदूर–नीति और चुनावी गठबंधनों से चलता है; वे ज्ञापनों, तालिकाओं और मत–आँकड़ों से ″प्रतिनिधित्व″ को राजनीतिक पूँजी में रूपान्तरित करते हैं।[14]

अन्ततः दोनों की रणनीतियाँ परस्पर–विपरीत दिखते हुए भी औपनिवेशिक राज्य पर बहु–दिशात्मक दबाव बनाती हैं गांधी जन–नैतिक वैधता को, और अम्बेडकर संवैधानिक–न्याय की संस्थागत संरचना को केन्द्र में रखते हैं; भारतीय स्वाधीनता और लोकतन्त्र का वास्तविक विस्तार इन्हीं दो धाराओं जन–आन्दोलन की नैतिकता और अधिकार–आधारित संवैधानिकता के संयुक्त प्रभाव से समझा जाना चाहिए।

प्रभाव, विरासत और प्रासंगिकता

स्वतंत्रता के बाद भारत की नीतियों, संस्थाओं और जनआंदोलनों पर गांधी और अम्बेडकर का प्रभाव बहुस्तरीय और परस्पर आलोचनात्मक–पूरक रहा। अम्बेडकर ने संविधान की प्रस्तावना, मौलिक अधिकारों और नीति–निदेशक तत्त्वों के माध्यम से ″सामाजिक क्रांति″ का संवैधानिक ढाँचा निर्मित किया ऐसा लोकतंत्र जो राजनीतिक रूप से ही नहीं, सामाजिक–आर्थिक रूप से भी न्याय के लक्ष्य का अनुसरण करे। इस वैचारिक आधार के कारण राज्य ने समानता, स्वतंत्रता और बंधुत्व को नीति–निर्माण की दिशा–सूचक मान्यताओं के रूप में स्वीकार किया, जिससे आरक्षण, समान अवसर और वंचित समूहों के प्रतिनिधित्व जैसी व्यवस्थाओं को वैधता मिली। उधर गांधी का ″रचन. ात्मक कार्यक्रम″ खादी–ग्रामोद्योग, बुनियादी शिक्षा, अस्पृश्यता–निवारण, ग्राम–स्वच्छता, किसान–मजदूर कल्याण स्वराज की नैतिक अर्थव्यवस्था का कार्यक्रम था, जिसने स्वतंत्र भारत में विकेन्द्रीकृत विकास, ग्रामोन्मुख नीतियों और स्वावलंबन की संवैधानिक–नीतिगत कल्पनाओं को निरंतर प्रेरित किया।15 इस प्रकार एक ओर संविधानवाद से सामाजिक–न्याय की संस्थागत संरचना बनी, तो दूसरी ओर गांधीवादी लोक–कार्य ने नागरिक–आचार, अस. हयोग–सत्याग्रह और आत्मानुशासन की संस्कृति का संवर्धन किया।

दलित आंदोलन के विकास में अम्बेडकर की बौद्धिक–राजनीतिक परंपरा निर्णायक आधार बनी। औपनिवेशिक दौर में संगठित दलित राजनीति के विस्तार से लेकर स्वतंत्रता के बाद 1970 के दशक में उभरे दलित पैंथर्स तक, आंदोलन ने सामाजिक–सांस्कृतिक प्रभुत्व को चुनौती दी और वर्ग–जाति के संयुक्त संघर्ष की परिकल्पना प्रस्तुत

की। 1970–80 के दशक की नई सामाजिक आंदोलनों की लहर ने दलित स्वाभिमान, सांप्रदायिकता–विरोध और राज्य के प्रति अधिकार–आधारित दावों को तीक्ष्ण किया; यह सब अम्बेडकर के सामाजिक लोकतंत्र और संवैधा. निक नैतिकता के आग्रह से वैचारिक ऊर्जा पाते रहे।16 समानांतर, गांधीवादी संस्थाएँ सर्वोदय, भूदान–ग्रामदान, खादी और ग्रामोद्योग ने ग्राम समाज के नैतिक–उत्पादक पुनर्निर्माण और अहिंसक जन–संगठन की परंपरा को आगे बढ़ाया, जिसने स्वेच्छा–आधारित सामाजिक सेवा, शराब–निरोध, साम्प्रदायिक सद्भाव और श्रम–गरिमा को जनजीवन में विषय बनाया।

वर्तमान भारतीय लोकतंत्र में दोनों की प्रासंगिकता नीतियों और राजनीतिक संस्कृति, दोनों स्तरों पर स्पष्ट है। एक ओर, संवैधानिक बुनियाद समाजिक समानता, आरक्षण–प्रतिनिधित्व, और कमजोर तबकों के संरक्षण जैसे क्षेत्रों में नीतिगत कसौटी प्रदान करती है; वहीं, नागरिक आचरण में गांधी की अहिंसा–सत्य, सत्याग्रह, संवाद और स्वराज की अवधारणाएँ वैमनस्य–निरोध, शांतिपूर्ण विरोध और सामुदायिक दायित्व के व्यावहारिक अनुशासन सिखाती हैं। आज जब लोकतांत्रिक विमर्श ध्रुवीकरण, घृणा–भाषा, असमानता और संस्थागत अविश्वास जैसी चुनौतियों से घिरा है, अम्बेडकर का आग्रह राजनीतिक लोकतंत्र की टिकाऊ आधारशिला के रूप में सामाजिक लोकतंत्र और गांधी का आग्रह राजनीति की नैतिक आत्मा के रूप में रचनात्मक कार्यक्रम दोनों समान रूप से मार्गदर्शक सिद्ध होते हैं। नीतिनिर्माताओं के लिए इसका निचोड़ यह है कि विकास–आर्थिक लक्ष्यों को न्याय–समानता की संवैधानिक प्रतिज्ञाओं के साथ युग्मित किया जाए, और सामाजिक संघर्षों के समाधान में अहिंसक, भागीदारीपूर्ण और ग्रामोन्मुख उपायों को प्राथमिकता दी जाए। यही वह संगम है जहाँ अम्बेडकर की संवैधानिकता और गांधी की रचनात्मकता समकालीन भारत के लोकतांत्रिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक पूरक बनती है।

निष्कर्ष

गांधी और अम्बेडकर के तुलनात्मक अध्ययन का यह अध्याय संकेत करता है कि दोनों परंपरा और आधुनिकता के चौराहे पर खड़े होकर भारत के लोकतांत्रिक स्वरूप को गढ़ते हैं, पर उनकी प्राथमिकताएँ भिन्न हैं। गांधी की नैतिक–राजनीति 'स्वराज' की आत्मानुशासित, ग्राम–केन्द्रित कल्पना से प्रेरित है, जो औद्योगिक आधुनिकता और संसदीय यांत्रिकी की सीमाओं की आलोचना करती है; इस आलोचना का लक्ष्य यह चेताना है कि सत्ता के आ. पचारिक रूप पर्याप्त नहीं, नैतिक आत्मपरिवर्तन अनिवार्य है. दूसरी ओर अम्बेडकर का आग्रह है कि राजनीतिक लोकतंत्र तभी टिकाऊ होगा जब वह सामाजिक लोकतंत्रअर्थात् स्वतंत्रता, समानता और बंधुत्व पर टिके; उनके लिए जाति–व्यवस्था का उन्मूलन संवैधानिकता की पूर्वशर्त है। इस रूप में दोनों परंपरा की 'नैतिक पूँजी' और आधुनिक अधिकार–न्याय की 'संवैधानिक पूँजी' के अलग–अलग मार्ग प्रस्तावित करते हैं; पर लक्ष्य मानवीय गरिमा साझा है। 1932 के पूना पैक्ट की वार्ताओं ने इस भिन्नता को ऐतिहासिक आयाम दिया, पृथक निर्वाचिका के प्रश्न पर असहमति के बावजूद अनुसूचित जातियों के लिए आरक्षित प्रतिनिधित्व की संवैधानिक राह खुली, जिसने आगे चलकर स्वतंत्र भारत की नीति–रचनाओं में स्थायी प्रभाव डाला। समकालीन विमर्शों में भी यह द्वंद्व नैतिक–आध्यात्मिक सुधार बनाम अधिकार–आधारित न्याय भारतीय लोकतंत्र की आत्मा पर विचार का स्रोत बना हुआ है। समग्रतः, यह निष्कर्ष उभ. रता है कि भारतीय लोकतंत्र की विश्वसनीयता नैतिक स्वशासन और संवैधानिक न्याय दोनों के सन्तुलन पर टिकी है; गांधी और अम्बेडकर इस द्वैध की दो धाराएँ हैं जो मिलकर सार्वजनिक जीवन की धारा को समृद्ध करती हैं।

Author's Declaration:

The views and contents expressed in this research article are solely those of the author(s). The publisher, editors, and reviewers shall not be held responsible for any errors, ethical misconduct, copyright infringement, defamation, or any legal consequences arising from the content. All legal and moral responsibilities lie solely with the author(s).

संदर्भ

1. बनर्जी, गुरुदास. (2002). अंबेडकररू सामाजिक न्याय के शिल्पी. नई दिल्लीः अटलांटिक पब्लिशर्स. पृ. 132.
2. नंदी, आशीष. (1995). गांधी और अंबेडकर– विचारों का संवाद. नई दिल्लः सेज पब्लिकेशंस. पृ. 55.

3. गांधी, एम. के. (2010). हिंद स्वराज (संशोधित संस्करण). अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन गृह. पृ. 63.
4. कीर, डी. (2015). डॉ. अंबेडकर– जीवन और मिशन (तृतीय संस्करण). मुंबईः पॉपुलर प्रकाशन. पृ. 102–103.
5. कबीर, शारदा. (1991). डॉ. अंबेडकर और भारतीय समाज. मुंबईः पॉपुलर प्रकाशन. पृ. 76.
6. गांधी, एम. के. (1962). ग्राम स्वराज. अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन गृह.
7. अंबेडकर, बी. आर. (1949). "हमें अपने राजनीतिक लोकतंत्र को सामाजिक लोकतंत्र बनाना होगा". संविधान सभा वाद–विवाद, खंड 11, पृ. 979. नई दिल्लीः भारत सरकार.
8. गांधी, आर. (2015). स्वतंत्रता और सामाजिक न्यायरू अंबेडकरः गांधी बहस. इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, 50(15), 35–36. मुंबईः समीक्षा ट्रस्ट.
9. अंबेडकर, बी. आर. (1936/1979). जाति का उन्मूलन. डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर– लेखन और भाषण, खंड 1 (पृ. 39). मुंबईः महाराष्ट्र सरकार, शिक्षा विभाग.
10. हरिजन. (1933, 11 फ़रवरी; 18 फ़रवरी). (अंक–संदर्भ).
11. गांधी, एम. के. (11 फ़रवरी 1933; 18 फ़रवरी 1933). "डॉ. अंबेडकर और जाति" एवं "मंदिर–प्रवेश और वर्णाश्रम," हरिजन (11 फ़रवरी 1933; 18 फ़रवरी 1933), पुनर्मुद्रित– महात्मा गांधी के संकलित कार्य, खंड 53, पृ. 259. नई दिल्लः प्रकाशन प्रभाग, भारत सरकार.
12. किश्वर, एम. (1985). गांधी और महिलाएँ. इकॉनॉमिक ऐंड पॉलिटिकल वीकली, 20(41), 175. मुंबईः समीक्षा ट्रस्ट.
13. चंद्र, बी., मुखर्जी, एम., मुखर्जी, ए., पणिक्कर, के. एन., एवं महाजन, एस. (2000). भारत की स्वतंत्रता की लड़ाई, 1857–1947 (पृ. 190–191). नई दिल्लीः पेंगुइन बुक्स इंडिया.
14. गांधी, एम. के. (1999). महात्मा गांधी के संकलित कार्य, खंड 98 (पृ. 121). नई दिल्ली' प्रकाशन प्रभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार।
15. गांधी, एम. के. (1954). रचनात्मक कार्यक्रम– उसका अर्थ और स्थान. अहमदाबादः नवजीवन प्रकाशन गृह. पृ. 16–17.
16. ओमवेट, जी. (2014). दलित और लोकतांत्रिक क्रांति–औपनिवेशिक भारत में डॉ. अंबेडकर और दलित आंदोलन (पृ. 337). नई दिल्ली' सेज पब्लिकेशंस इंडिया.

Cite this Article-

'डॉ0 राधे श्याम,', 'भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में गांधी और अम्बेडकरः एक तुलनात्मक अध्ययन', Shodhpith International Multidisciplinary Research Journal, ISSN: 3049-3331 (Online), Volume: 1, Issue: 04, July-August 2025.

Journal URL- https://www.shodhpith.com/index.html
Published Date- 14 July 2025
DOI-10.64127/Shodhpith.2025v1i4008